उसके हाल पर छोड़ा हुआ बूढ़ा सेनानी

दिलीप चिंचालकर

यही वे दिन थे। इंदौर में 1857 का ग्रीष्म खत्म होने को था। पिछले कई हफ्तों से काली बदलिया घिर–घिर कर आ रही थीं। अरब सागर से आ रही हवाओं का उतना डर नहीं था। बैचेनी उत्तर हिन्दुस्तान से बह रही हवाएँ पैदा कर रही थीं। 30 जून की रात को जमकर मूसलधार बारिश हुई। लगा मौसम की सारी तपिश गल गई है।



पहली जुलाई की अलसुबह। आकाश साफ था। बीती रात कर्नल हेनरी शायद ठीक सो नहीं पाया था। तभी रेसीडेन्सी कोठी के अहाते में उसके क्रोध भरे शब्द सुनाई देने लगे। उसे मातहत से बहस करने की आदत नहीं थी। बात बढ़ती चली गई। गोरे साहब का गुस्सा फट पड़ा और उसने पिस्तौल निकाल कर दाग दी। गोली किसी को नहीं लगी। धमाका बहस खत्म करने का आदेश था गोया। कर्नल साहब पैर पटकते हुए अपने कक्ष में लौट गए। अहाते में शांति छा गई। गोली चलने की आवाज से पक्षियों की जो चहचहाट थम गई थी, फिर से शुरू हो गई। लेकिन हवा में तनाव साफ था।

जितना इस घटना से लग सकता है, कर्नल हेनरी मैरियन डयूरेंड उतना ही गुस्सैल था। वाइसरॉय लॉर्ड डलहौजी की बेरूखी के बावजूद वह अपनी काबिलियत के बूते पर आज इंदौर में रेसीडेन्ट के ओहदे पर था। बीमारी के कारण पिछला एक साल उसने इंग्लैड में आराम करते हुए बिताया था। अभी अप्रैल में ही उसने इंदौर में कामकाज संभाला था। आते ही अस्वस्थ करने वाले समाचार उसे लगातार मिलने लगे थे। पहले मेरठ फिर कानपुर से। अब तो मंदसौर से भी सिपाहियों में बढ़ते असंतोष की सुगबुगाहट थी। ऊपरी तौर पर तो उसने बगावत की सभी संभावनाओं को खारिज कर दिया था। परंतु अंदर ही अंदर बढ़ता तनाव आज इस तरह सामने आया था। डयूरेंड से पहले हैमिल्टन इंदौर में ईस्ट इण्डिया कंपनी का प्रतिनिधि था। डयूरेंड की तुलना में वह एक खुशमिजाज और समझदार अफसर था। तुकोजीराव (व्दितीय) महाराज साहब के साथ साथ वह इंदौर की जनता में भी लोकप्रिय था। उसके योरप लौट जाने से ही इंदौर में डयूरेंड के लिए जगह बन सकी थी।



आज सुबह डयूरेंड की जिससे झड़प हुई थी वह सआदत खाँ, हैमिल्टन साहब के अनुसार रिसालदार था। बीती रात हुई भारी बारिश में रेसीडेंसी की सुरक्षा टुकड़ी की गोला बारूद भीग गई थी। इसे वापस बुला लेने बाद बख्शी खुमानसिंह ने नई टुकड़ी नहीं भेजी थी। यह गंभीर मामला था। शायद यही बात अब कर्नल को परेशान कर रही थी। दूसरी यह कि रेसीडेन्सी का डेढ़ लाख पौण्ड का खजाना जो चांदी की सिल्लियों में था, जिसे डयूरेंड महू भेज कर सुरक्षित करना चाहता था, अब तक नहीं कर पाया था। डयूरेंड अपने अध्ययन कक्ष में बैठ कर रपट लिखने लगा। मेज पर रखी घड़ी सुबह के आठ बजकर बीस मिनट बता रही थी।

अचानक एक जोर का धमाका हुआ। डयूरेंड के हाथ की कलम लगभग छूट ही गई। रेसीडेन्सी के छज्जों पर बैठे कई कबूतर एक साथ पंख फडफड़ाकर उड़ चले। पीछे से कई शीशे टूटकर बिखरने की आवाजें आने लगी और बारूद की गंध हवा में फैल गई। डयूरेंड झपट कर खिड़की पर पहुँचता तभी दूसरा धमाका हुआ। और फिर लगातार धमाकों का सिलसिला शुरू हो गया। जो तोपें रेसीडेंसी कोठी की सुरक्षा के लिए तैनात थी, हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने उनका मुँह पलट कर रेसीडेंसी पर गोलाबारी आरंभ कर दी। यह शुरूआत थी सन् सत्तावन के विद्रोह के इंदौर अध्याय की।

कोठी से थोड़ी दूर महिदपुर कॉटिंजेंट के 200 और भोपाल कॉटिंजेंट के 270 सिपाहियों की छावनी थी। भील पल्टन के भी लगभग 200 सैनिक थे। देसी सिपाहियों के मन में फिरंगियों के प्रति घृणा की हद यह थी कि उनमें से एक भी रेसीडेन्सी के बचाव के लिए आगे नहीं आया। कर्नल डयूरेंड के अलावा सुरक्षा सलाहकार कर्नल ट्रेवर भी उस समय कोठी में मौजूद था। उससे मशवरा करने के बाद डयूरेंड ने पौने नौ बजे महू छावनी के कप्तान हंगरफोर्ड को सुरक्षा दस्ता भेजने के लिए सांडनी सवार रवाना किया।

चौदह मील दूर महू से कुमक आती भी तो क्या वह सआदत खाँ का साथ दे रहे 600 हथियारबंद विद्रोहियों का मुकाबला कर पाती? रेसीडेंसी की तल मंजिल पर बड़ी–बड़ी खिड़कियों पर लगे शीशे तो इन्हें रोकने में बिलकुल ही नाकामयाब रहे। जो भी विदेशी सामने आए – अफसर हो या महिलाएँ या बच्चे विद्रोहियों ने सबके साथ एक सा सलूक किया। दर्ज है कि 21 गोरे कत्ल हुए। मेजर इवांस बेल अपने संस्मरण 'अज्ञात सलाहकार की आखिरी सलाहें (last counsels of unknown counsellor) में लिखते हैं कि मृतकों में दरअसल दो ही योरोपीय थे।

जो भी हो, साढ़े दस बज गए फिर भी महू की ओर से कोई हलचल दिखाई नहीं दे रही थी। अब डयूरेंड को कोठी से भागने में ही समझदारी लगी। निकलने के दो ही रास्ते थे। एक था आज के चिड़ियाघर के पास खान नदी पर बने पुल से होकर मुंबई–आगरा मार्ग से। दूसरा था पिछवाड़े से यानी मोटे तौर पर रेडियो कालोनी, आजाद नगर गोल चक्कर, संवाद नगर, प्रकाश नगर, देवगुराड़िया मार्ग से तिल्लौर होते हुए महू जाने का। दूसरा विकल्प लंबा, बियाबान परंतु अधिक सुरक्षित था।

"इसमें हाल–फिलहाल कोई अड़चन दिखाई देती है तो वह है नदी पार सड़क किनारे का बरगद।"



गुप्तचर की इस बात पर डयूरेंड हैरान रह गया। वह कैसे?

"बरगद का यह वृक्ष इतना विशाल है कि इसके खोखले तने में दसेक हथियारबंद विद्रोही आसानी से छुप कर घात लगा सकते हैं।"

यह अतिरिक्त खतरा था जिससे पहले ही पार पाना आवश्यक था। बहरहाल एक आदमी भेज कर टोह ली गई। स्थिति सुरक्षित पाने पर ही बैलगाड़ियों में सवार डयूरेंड का लवाजमा तिल्लौर की ओर रवाना हुआ। पीछे कर्नल ट्रेवर घोड़े पर निकला।

 

इस घटना को आज 153 वर्ष हो रहे हैं। मेजर जनरल सर हेनरी डेली, मेजर इवांस बेल और वजीर बेग के रोज़नामचों में बिखरे छिटपुट तथ्यों को जोड़कर हम इस घटना की कल्पना ही कर सकते हैं। लेकिन इस घटना का एक प्रत्यक्षदर्शी आज भी जीवित है। वह है नदी पार सड़क किनारे खड़ा बरगद। पहले स्वाधीनता संग्राम में कुछ समय के लिए ही सही, गाँधी से पहले अहिंसक तरीके से अंग्रेजों की राह की रूकावट बना यह पेड़ एक स्वतंत्रता सेनानी कहलाने और ताम्रपत्र पाने की पात्रता रखता है। डेढ़ सौ वर्ष पहले भी अपने आकार प्रकार से जो इतना भव्य था वह आज एक धरोहर निश्चित है।

जैसा बरगद में होता है, इसकी एक शाखा ने सड़क पार कर दूसरा पेड़ खड़ा किया। आवाजाही में परेशानी के कारण कुछ वर्ष पहले एक लदे फंदे ट्रक ने वह शाखा तोड़ दी। कल जब इस 'कलागुरू विष्णु चिंचालकर मार्ग' को चौड़ा करने का दौर आएगा, क्या इस वृक्ष के इतिहास में मुकाम को ध्यान में रखा जाएगा?

स्वतंत्रता की पहली लड़ाई का यह सिपाही स्वाधीन भारत में आज तो पराधीन ही नजर आता है।

* * *

gauraiya@hotmail.com